संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 3 | पृष्ठ : 17 | सितम्बर 2011 | नई दिल्ली

हिन्दी हूं मैं! हिन्दी हूं मैं..
भारत माता के माथे की बिन्दी हूं मैं

हिन्दी दिवस

मदारी से मुद्दई बनता मीडिया

•

वाद, विवाद, अनुवाद की छाया से मुक्त हो हिन्दी पत्रकारिता

संवादसेतु

संपादक

आशुतोष

संपादक मंडल

रंजन कुमार

अमल कुमार श्रीवास्तव

नेहा जैन

सूर्यप्रकाश

कार्यालय

प्रेरणा, सी–56/20,

सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:

0120-2400335

mail@samvadsetu.com

वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु के इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

संवादसेतु मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा

वाद, विवाद, अनुवाद की छाया से मुक्त हो हिन्दी पत्रकारिता 3

न्यू मीडिया

फेसबुक का बढ़ता जाल 5

चौथा स्तंभ

मदारी से मुद्दई बनता मीडिया 7

विचार

पत्रकारिता के प्रकाशपुंज बाबूराव विष्णु पराड़कर 9

साक्षात्कार

'सौदेबाजी' की राह पर पत्रकारिता – अशोक टंडन 10

श्रद्धा सुमन

भाषायी पत्रकारिता के संस्थापक राजा राममोहन राय 12

परिचर्चा

हिन्दी पत्रकारिता की दशा और दिशा 13

शोध

आपातकाल की हिंदी पत्रकारिता का अनुशीलन 14

लेख

हिन्दी हूं मैं... 16

मीडिया शब्दावली 17

आश्विन कृष्ण द्वितीया, तद्नुसार 14 सितम्बर 2011। श्राद्ध पक्ष।

आज हिन्दी का वार्षिक श्राद्ध है। मैं इस संयोग से विस्मित हूं कि हिन्दी दिवस अधिकांश श्राद्ध पक्ष में पड़ता है। जिस प्रकार श्राद्ध पक्ष में हम अपने पूर्वजों को स्मरण करते हैं, कुछ वैसे ही हिन्दी को भी याद करने का चलन चल पड़ा है।

मेरे एक पड़ोसी जब तक जीवित रहे, पुत्र–पुत्रवधू के साथ उनकी कभी बनी नहीं। उनकी मृत्यु के बाद वही पुत्र उनको स्मरण करते हुए भाव–विभोर हो जाता है। उनकी तिथि पर प्रतिवर्ष श्राद्ध में ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन करा कर दक्षिणा देता है। मैंने एक बार उसे कहा– तुम्हारे पिता तुम्हारे आचरण से हमेशा व्यथित रहे। अब ऐसा क्या हो गया कि तुम इतना समारोहपूर्वक श्राद्ध करते हो। उसने उत्तर दिया – उनकी तिथि हमें यह आश्वासन देती है कि वह अब लौट कर नहीं आयेंगे। संभवतः हिन्दी दिवस भी मनाने वालों को यही आश्वासन देता है। हिन्दी जल्दी नहीं आयेगी और वे लम्बे समय तक हिन्दी दिवस मना सकेंगे।

जो लोग हिन्दी पत्रकारिता को दशकों तक अंग्रेजी के अनुवाद की खूंटी पर टांग कर रखने के अपराधी हैं वहीं हिन्दी दिवस पर उसकी दुर्दशा का रोना रोते हैं। इस वार्षिक कर्मकाण्ड में उनका स्थान मंच पर तय है। हिन्दी के श्राद्ध के इन महाब्राह्मणों ने अपने भोज का इंतजाम पक्का कर रखा है। नये पत्रकारों को यह हिन्दी को सरल बनाने के लिये विदेशी भाषाओं के शब्द जोड़ने का नुस्खा बताते हैं और खुद हिन्दी के नाम पर विदेश यात्राओं की तिकड़म भिड़ाते हैं।

जिनकी दाल–रोटी हिन्दी के नाम पर चल रही है वहीं उसको गर्त में धकेलने में लगे हुए हैं। साहित्य के नाम पर लेखक जिस शब्दावली का प्रयोग भाषा में बढ़ाते जा रहे हैं उसका अर्थ समझाने में अध्यापकों को भी पसीना आने लगता है। देश के सबसे बड़े समाचार पत्र समूह का दावा करने वाले समूह के हिन्दी दैनिक के विषय में एक साहित्कार ने टिप्पणी की कि अमुक हिन्दी पत्र में छपे समाचार को समझने के लिये पाठक को कम से कम स्नातक तक अंग्रेजी पढ़ा होना जरूरी है।

हाल ही में लगे पुस्तक मेले में हर प्रकाशक बिक्री न होने का दुखड़ा रोता मिला। ग्यारह सौ प्रतियां छाप कर पुस्तकालयों में पहुंचाने के बाद प्रकाशक अपने कर्तव्य को पूरा मान लेते हैं। एक–एक प्रकाशक कई–कई नामों से पुस्तकें बेचने की कोशिश करते मिलते हैं। फर्जीवाड़ा यहां तक आ पहुंचा है कि एक ही पुस्तक को दो नामों से छाप कर पुस्तकालयों में खपा दिया जाता है।

हिन्दी की हालत गाय जैसी हो गयी है। उसे पालना बोझ है और काट कर मांस और खाल बेचना मुनाफे का सौदा। इस स्थिति में हिन्दी को बचायेगा कौन। इन कसाइयों के मुंह तो हिन्दी का खून लग चुका है।

इस अंधेरे में भी उम्मीद की एक किरण आती दिख रही है। पेशेवर हिन्दी वालों से इतर शौकिया हिन्दी गुनगुनाने वालों ने इंटरनेट पर हिन्दी का एक वितान बुन दिया है। उन्हें न सरकारी खरीद में कोई रुचि है और न किताबें बेचने की ललक। कोमल–कठोर शब्दों का एक अनगढ़ आसमान आकार ले रहा है। हिन्दी दिवस के इस वार्षिक श्राद्ध पर जब हम दक्षिण दिशा में मुख कर हिन्दी की पेशेवर दुनियां को तर्पण करें तो अदम्य उत्साह से भरी युवा साहित्यकारों की नवोदित पीढ़ी के उजास को पूरब की ओर मुंह कर अर्घ्य देना न भूलें। हिन्दी के भविष्य का सूरज भी इस पूरब से ही निकलेगा और इंटरनेट आधारित संवाद माध्यमों का मंगलाचरण भी इस प्राची में ही गूंजेगा।

भवदीय

संपादक

वाद, विवाद, अनुवाद की छाया से मुक्त हो हिन्दी पत्रकारिता

ऋतेश पाठक

हिन्दी के सर्वप्रथम दैनिक उदन्त मार्तण्ड के प्रथम और अंतिम संपादक पंडित युगल किशोर शुक्ल ने लिखा था ''इस 'उदन्त मार्तण्ड' के नांव पढ़ने के पहिले पछाहियों के चित का इस कागज न होने से हमारे मनोर्थ सफल होने का बड़ा उतसा था। इसलिए लोग हमारे बिन कहे भी इस कागज की सही की बही पर सही करते गये पै हमें पूछिए तो इनकी मायावी दया से सरकार अंगरेज कम्पनी महाप्रतापी की कृपा कटाक्ष जैसे औरों पर पड़ी, वैसे पड़ जाने की बड़ी आशा थी और मैंने इस विषय में यथोचित उपाय किया पै करम की रेख कौन मेटै। तिस पर भी सही की बही देख जो सुखी होता रहा अन्त में नटों कैसे आम आदमी दिखाई दिए इस हेत स्वारथ अकारथ जान निरे परमारथ को कहां तक बनजिए अब अपने व्यवसायी भाइयों से मन की बात बताय बिदा होते हैं। हमारे कुछ कहे सुने का मन में ना लाइयो जो देव और भूधर मेरी अंतर व्यथा और इस गुण को विचार सुधि करेंगे तो ये गुण मेरे ही हैं। शुभमिति।''

यह उद्धरण उस समय का है जब उदन्त मार्तण्ड लगभग अपनी अंतिम सांसें गिन रहा था। आज इस घटना को लगभग 183 वर्ष होने को हैं लेकिन हालात बहुत कुछ नहीं बदले हैं। बस इतना सा अंतर आया है कि तब पंडित युगल किशोर शुक्ल व्यापारियों से आगे आने को कह रहे थे और आज व्यापारी वर्ग आगे तो आ चुका है मगर आगे आने का उसका एकमात्र उद्देश्य मुनाफा कमाना है। उसे हिन्दी, हिन्दीभाषियों और हिन्दी की पत्रकारिता से कोई भावनात्मक लगाव नहीं है।

यही वजह है कि हर साल हिन्दी दिवस के मौके पर इस भाषा के बढ़ते बाजार, हिन्दीभाषियों की संख्या, इसकी तकनीकी क्षमता के विस्तार और इस प्रकार के तमाम आंकड़ों के सुर्खियों में आने के बावजूद हिन्दी पत्रकारिता अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए जूझती दिखती है। कहने को हिन्दी पत्रकारिता के बाजार का विस्तार हो रहा है, इसमें निवेश बढ़ रहा है लेकिन साथ ही यह भी कटु सत्य है कि अपनी शुरुआत के 185वें वर्ष में प्रवेश करने के बाद भी हिन्दी पत्रकारिता वाद, विवाद और अनुवाद की छाया से मुक्त नहीं हो पा रही है जिसके कारण सार्थक परिणाम भी नहीं दे पा रही है।

वाद और विवाद सिर्फ हिन्दी की समस्याएं नहीं है बल्कि ये अनुवाद के रास्ते ही हिन्दी जगत में आयी हैं। दरअसल, अनुवाद पर आश्रित होने की वजह से ही हिन्दी पत्रकारिता अंग्रेजी की ही तरह भ्रामक वादों और तुच्छ विवादों में घिरकर अपने मूल उद्देश्य को लगभग भुला चुकी है। इसलिए आज सबसे बड़ी जरूरत उसे अनुवाद की इस छाया से मुक्त करने की है ताकि हिन्दी की पत्रकारिता अपना मौलिक ढांचा विकसित कर सके और हिन्दी के अनुकूल व्यवस्थाएं तैयार हो सकें।

शुक्ल जी ने ही उदन्त मार्तण्ड के प्रथम अंक में लिखा था ''यह उदन्त मार्तण्ड अब पहिले पहल हिन्दुस्तानियों के हित हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी ओ फारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन् बोलियों के जान्ने ओ पढ़ने वालों को ही होता है। ..... देश के सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंय ओपराई अपेक्षा जो अपने भावों के उपज न छोड़े, इसलिए बड़े दयावान करुणा ओ गुणनि के निधान सबके विषय श्रीमान् गवरनर जेनेरल बहादुर की आयस से ऐसे चाहत

में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठांटा .....''

आज हिन्दी को 'जान्ने ओ पढ़ने वालों' के लिए उनकी बोली में काम करने वाले संस्थानों की कमी नहीं है। परंपरागत अखबारों, पत्रिकाओं से लेकर टीवी और इंटरनेट तक सब जगह इनकी मौजूदगी है और संख्यात्मक रूप से कहें तो दमदार मौजूदगी है। देश के सर्वाधिक बिकने वाले अखबारों की सूची में अपना दबदबा होता है लेकिन बस इसलिए कि हिन्दी जानने–समझने वालों के लिए इसे समझना आसान है। मौलिकता की खोज में पाठकों/दर्शकों को एक बार फिर से अंग्रेजी का ही रूख करना पड़ता है। आखिर इसकी वजह क्या है? इसकी सबसे बड़ी वजह अनुवाद पर निर्भर रहने की विवशता है।

आय और लाभांश के मामले में हिन्दी मीडिया संस्थानों की हालत जो भी हो, ढांचागत हालत यही है कि उनके पास उतनी बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं जितनी अंग्रेजी के पास हैं। इसकी एक बड़ी वजह यह भी है कि हिन्दी में भी अव्वल रहने वाले ज्यादातर संस्थान सिर्फ हिन्दी के नहीं हैं। ये द्विभाषिक या बहुभाषी संस्थान हैं और अंग्रेजी को ही इन्होंने अपना चेहरा बना रखा है। सारी मौलिक व्यवस्थाएं और सुविधाएं अंग्रेजी को प्राप्त हैं और शेष भाषाओं की शाखाएं उनके अनुवाद तक सीमित हैं।

हिन्दी हमारी मातृभाषा है; मात्र एक भाषा नहीं.

प्रिंट से इलेक्ट्रॉनिक तक हिन्दी की स्थिति यही है। अखबारों, संवाद समितियों और चैनलों तक में जोर अंग्रेजी पर है। संस्थान अपनी ऊर्जा का अधिकतम हिस्सा अंग्रेजी पर खर्च कर रहा है और हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं से उनका वास्ता काम चलाने भर का है। देश में बड़े स्तर के कार्यक्रम हों, विदेश दौरों का मामला हो या फिर कोई अन्य खर्चीला काम, कवरेज के लिए प्राथमिकता अंग्रेजी के पत्रकारों को दी जाएगी या फिर अगर आप हिन्दी के हैं तो आप इसी शर्त पर भेजे जाएंगे कि अंग्रेजी को भी आप पर्याप्त सेवाएं दें। अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद नियति है लेकिन हिन्दी से अंग्रेजी अनुवाद की जहमत नहीं उठायी जाएगी। यही स्थिति बुनियादी सुविधाओं और कई जगह तो वेतन ढांचों के मामले में भी देखने को मिलती है। कई बार देखा जाता है कि एक ही संस्थान में हिन्दी के पत्रकारों का औसत वेतन उसी संस्थान के अंग्रेजी के पत्रकारों के मुकाबले आधे से भी कम है।

इस परिप्रेक्ष्य में यह बात स्पष्ट तौर पर कही जा सकती है कि हिन्दी इन संस्थानों के लिए दुधारू गाय जरूर मालूम पड़ती है लेकिन उसे चारा देने में सबको परहेज है। हाल के वर्षों तक ऐसा होता था कि बड़े पत्र समूहों में किसी एक संस्करण से प्राप्त होने वाली अच्छी आय का उपयोग नये संस्करण प्रकाशित करने या अखबारों की गुणवत्ता सुधारने में होता था लेकिन अब ऐसी प्रवृति पनप रही है कि हिन्दी का उपयोग केवल राजस्व प्राप्ति के लिए हो और उस राजस्व का इस्तेमाल अन्य खर्चों की पूर्ति के लिए किया जाए। ताज्जुब होता है यह सुनकर कि हिन्दी का एक प्रसिद्ध और काफी पुराना दैनिक इन दिनों अपने विज्ञापन कारोबार से मिलने वाली रकम का भी जायदादी कारोबार में निवेश कर रहा है। बिल्डरों के मीडिया में आने की प्रवृति कुछ वर्ष पहले तक देखी जा रही थी लेकिन मीडिया वालों की बिल्डर बनने या अन्य कारोबार में घुसने की कोशिश कहीं से भी शुभ संकेत नहीं है, खासकर, हिन्दीभाषी मीडिया के मामले में उसकी ढांचागत कमजोरियों के मद्देनजर यह बात ज्यादा प्रभावी दिखती है।

यह तो बात थी अनुवाद की। पत्रकारिता के मूलतः बौद्धिक कार्य होने के कारण इसके पेशेवरों के बीच वैचारिक वादों के प्रति विशेष अनुराग की संभावना हमेशा बनी रहती है। हिन्दी पत्रकारिता के साथ भी ऐसा हो रहा है और वादों के प्रति अनुराग के अतिरेक में इसके पत्रकार कई बार सूचक की अपनी भूमिका से उठकर प्रवक्ता की भूमिका में आने को विकल मालूम पड़ते हैं। इस वजह से बारंबार उनकी निष्पक्षता पर सवाल खड़े होते हैं। मार्क्सवाद से उग्र राष्ट्रवाद तक और यथास्थितिवाद से आधुनिकतावाद तक वैचारिक मंथन के मोर्चों पर कई बार पत्रकारों की तटस्थता संदिग्ध होती रही है। इस स्थिति का खामियाजा कहीं न कहीं पत्रकारिता को ही उठाना पड़ेगा। हिन्दी के साथ विडम्बना यह है कि उसके अधिकतर पत्रकार या तो इन वादों के मोहपाश में हैं या तात्कालिक लाभों के अनुकूल अलग–अलग वादों का चोला बदलते रहते हैं और जो लोग बौद्धिकता के इस ज्वर से पीड़ित नहीं हैं उनके लिए विवाद ही खबर है।

जैसा कि पहले कहा गया कि वाद और विवाद की समस्या भी हिन्दी में आयातित है। भारतीय मीडिया का मौलिक चरित्र अंग्रेजी का मीडिया ही तय करता है और इस वजह से अंग्रेजी की ही तरह हिन्दी में भी तुच्छ विवादों को खबर बनाने की कोशिश होती है। अंग्रेजी का टीवी मीडिया तो इस बीमारी से उबरने की बहुत हद तक कोशिश कर रहा है लेकिन अब तक अबोधपन से गुजर रही हिन्दी मीडिया के लिए यह समस्या विकराल ही होती जा रही है। ग्लैमर की दुनिया के बेसिरपैर विवाद प्रिंट से इलेक्ट्रॉनिक तक में कई बार मुख्य खबर बनकर महत्वपूर्ण खबरों को धकिया रहे हैं। सीएमएस मीडिया लैब समेत कई शोध संस्थान अपनी रिपोर्टों में इस बात की पुष्टि कर चुके हैं। ऐसी सतही खबरों में उलझकर रहने की हिन्दी मीडिया की अनावश्यक विवशता भी कहीं न कहीं उसकी दुर्गति का कारण है। इसलिए अब हिन्दी मीडिया को अपने बेहतर भविष्य से उबरने के लिए वाद, विवाद और अनुवाद की छाया से मुक्त होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने के लिए पहल करनी होगी। ■

फेसबुक का बढ़ता जाल

वंदना शर्मा

आज का युग इंटरनेट का युग है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने आज देश–विदेश में पूरी तरह से अपनी पकड़ मजबूत कर ली है। लोगों का अधिकतर समय अब इन्हीं साइट्स पर बीतने लगा है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने हजारों किलोमीटर की दूरियों को तो जैसे खत्म सा कर दिया है। ट्विटर, ऑरकुट, माई स्पेस, गूगल प्लस या लिंक्ड इन जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स की फेहरिस्त में फेसबुक सबसे पहले नम्बर पर शुमार है। यह कहना गलत नहीं होगा कि आज आंदोलनों की शुरूआत ही फेसबुक से होती है। मिस्र में सरकार का तख्ता पलट कर देने वाले आंदोलन की शुरूआत भी फेसबुक द्वारा ही की गई थी। वायल गोनिम एक ऑनलाइन कार्यकर्ता ने एक गुमनाम पेज बनाया और लोगों को तहरीर चौक पर इकट्ठा होने की अपील की। यह आंदोलन 250 लोगों की मौत का कारण बनने के बावजूद सफल रहा और ऐतिहासिक भी।

फेसबुक के जरिये आज उपयोगकर्ता अपनी व दोस्तों–रिश्तेदारों की फोटो, वीडियो या अन्य बातें सबके साथ साझा करते हैं। दूर रहने वाले दोस्तों के साथ बातें करने और उनके साथ जुड़े रहने का यह एक ऐसा माध्यम है जिससे हर दिन नये–नये लोग जुड़ रहे हैं। फेसबुक की शुरूआत 4 फरवरी 2004 को हुई। इसे अभी एक दशक भी नहीं हुआ है कि विश्व में इसके कुल उपयोगकर्ता 75 करोड़ हैं। वर्तमान समय में भारत विश्व में फेसबुक उपयोगकर्ता की सूची में 8वें पायदान पर है। फेसबुक ने हाल ही में हैदराबाद में अपना एक कार्यालय खोला है। भारत में लाखों लोग फेसबुक से जुड़े हुए हैं। हालांकि गूगल की 'गूगल प्लस' सोशल नेटवर्किंग सेवा ने इसके कुछ उपयोगकर्ताओं का रूख अपनी ओर तो किया है लेकिन अब भी फेसबुक ही सबसे आगे है। भारत में फेसबुक का इतने बड़े स्तर पर प्रचलित होने के पीछे कारण यह है कि आज की पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति की ओर बड़ी तेजी से अग्रसरित हो रही है। देश में लाखों युवा मोबाइल से फेसबुक पर लॉग इन करते हैं। एप्पल जैसी कंपनियों ने अब ऐसे फोन निकाले हैं जो बिना इंटरनेट कनेक्शन के फेसबुक तक पहुंच रखने में सक्षम हैं। फेसबुक केवल बातचीत का जरिया न होकर और भी कई भूमिकाएं अदा कर रहा है। इन दिनों फेसबुक एक सशक्त और लोकप्रिय माध्यम बनकर उभरा है जो जनता के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन चुका है। भारत में यह अन्ना की आवाज बनी है तो अमेरिका में ओबामा की। हाल ही में फेसबुक पर अन्ना के आंदोलन को मिला जनसमर्थन इसका प्रमाण है। देश भर में लाखों लोग अन्ना द्वारा भ्रष्टाचार के खिलाफ शुरू किए गए आंदोलन 'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' नाम के पेज के साथ फेसबुक पर जुड़े। फेसबुक पर सबसे अधिक युवाओं की संख्या होने से इस आंदोलन को युवाओं का समर्थन भी अधिक मिला। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रमेश गौतम का मानना है ''आंदोलन आज फेसबुक से शुरू होते हैं और आलोचना का लोकतंत्र भी नए मीडिया से बना है।''

आज सामाजिक मुद्दों पर लोग लगातार अपनी राय रखते हैं। पिछले कुछ माह तक भूमि अधिग्रहण पर चली किसानों और सरकार के बीच की लड़ाई में भी लोगों ने फेसबुक पर बहस छेड़कर किसानों का समर्थन किया। इनके अलावा भी फेसबुक पर लोगों ने एक–दूसरे को किसी विशेष मुद्दे या लक्ष्य को लेकर संयुक्त रूप से जोड़ने के लिए कुछ ऑनलाइन कम्युनिटी और ग्रुप भी बनाए हुए हैं। हाल ही में फेसबुक पर एक 'हिन्दू स्ट्रगल कमेटी' बनाई गई है जो 'सांप्रदायिक एवं लक्षित हिंसा कानून' के विरोध में है। इसी प्रकार से 'यूथ अगेंस्ट करप्शन' नाम से भी युवाओं की एक कमेटी बनायी गई है। इसी तरह एक ही कॉलेज या कंपनी के सहकर्मी, कविताएं या शेरो–शायरी पसंद करने वाले युवा और इनके साथ गैरसरकारी संस्थाएं भी अपने ग्रुप

बनाकर लोगों को जोड़े हुए हैं, जो सभी के बीच संपर्क बनाने का काम करता है। इनसे हटकर देखा जाए तो आज फेसबुक युवाओं को नौकरियां भी दिला रहा है। संभावनाओं को देखते हुए बहुत सी कंपनियों ने फेसबुक पर अपने जॉब पेज बनाए हुए हैं। इनके जरिये बहुत से युवाओं को नौकरी मिली है। कई युवाओं को फेसबुक से फ्रीलांसिंग का भी काम मिला है। युवाओं ने अपनी फेसबुक वॉल पर अपने काम से जुड़ी जानकारियां दी हैं जो उन्हें नौकरी के लिए प्रस्ताव दिलाने में मददगार साबित होती हैं। फेसबुक पर कई कंपनियों ने अपने उत्पादों के विज्ञापन दिए हुए हैं जिससे कम खर्च में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ई–मार्केटिंग में भी बढ़ोत्तरी हुई है। फेसबुक उभरते हुए लेखकों के लिए एक मंच बन चुका है जो पुस्तक के विमोचन से पहले पुस्तक का कुछ अंश पाठकों की नजरों में लाने के लिए सहायक है। अब सरकारी निकायों ने अपने काम को मुस्तैदी के साथ करने के लिए खुद को फेसबुक से जोड़ लिया है। दिल्ली नगर निगम, दिल्ली पुलिस और ट्रैफिक पुलिस ने फेसबुक के माध्यम से लोगों की समस्याओं का निवारण किया है। ऐसा बताया जा रहा है कि जल्दी ही रेलवे विभाग भी फेसबुक पर शिरकत करेगा।

दफ्तरों की ही बात की जाए तो इसका एक और पक्ष सामने आया है। कुछ निजी कंपनियों के साथ–साथ सरकारी दफ्तरों में भी सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर बैन लगा दिया गया है ताकि कर्मचारी इनसे अलग हटकर अपने काम पर अधिक ध्यान दें।

जहां फेसबुक एक ओर लोगों के बीच सेतु का काम कर रहा है वहीं दूसरी ओर फेसबुक लोगों को भटकाव की ओर भी लेकर जा रहा है। आजकल फेसबुक पर कुछ असामाजिक तत्वों द्वारा फर्जी एकाउंट बनाए जाते हैं। लंदन में हो रहे दंगों की शुरूआत का कारण भी फेसबुक ही था। लंदन के ही दो युवकों ने फेसबुक पर एकाउंट बनाकर लोगों को आगजनी और लूटपाट के लिए उकसाया। कुछ झूठे एकाउंट ऐसे होते हैं जो किसी बड़ी शख्सियत के नाम पर होते हैं। हाल ही में, फेसबुक पर ब्रिटेन की मशहूर पॉप सिंगर लेडी गागा की मौत की अफवाह उड़ाई गई जिससे लोग काफी हैरान हुए। इससे पहले भी फेसबुक बहुत से विवादों का केन्द्र बिन्दु रहा है। पिछले साल पाकिस्तान में फेसबुक पर बैन लगा दिया गया क्योंकि फेसबुक पर एक प्रतियोगिता आयोजित की गई थी कि लोग अपने तरीके से पैगंबर मोहम्मद की पेंटिंग बनाएं। पाकिस्तान में लगातार विरोध प्रदर्शन के बाद फेसबुक को बैन कर दिया गया। चीन में कम्युनिस्ट पार्टी ने अश्लीलता फैलाने का हवाला देकर फेसबुक को बैन किया हुआ है। विशेषज्ञों का मानना है कि चीन में ऐसा इसीलिए किया गया है ताकि वहां लोकतंत्र न पनप पाए और लोग एक–दूसरे से न जुड़ पाएं। चीन फेसबुक और अन्य सोशल नेटवर्किंग साइट्स के साथ अब तक लाखों वेबसाइट्स को भी बंद कर चुका है। फेसबुक का गलत तरीके से प्रयोग करने के संदर्भ में एक और उदाहरण सामने आया है। फेसबुक इन दिनों कॉल गर्ल्स के लिए एक बाजार बन कर उभर रहा है। एक अध्ययन के मुताबिक 85 प्रतिशत कॉल गर्ल्स ने फेसबुक पर अपने एकांउट बनाए हुए हैं। उन्होंने लोगों को फंसाने और ग्राहकों को लुभाने के लिए कामुक तस्वीरें भी लगाई हुई हैं जिसे वे अपडेट करती रहती हैं।

जिन देशों में फेसबुक है वहां उपयोगकर्ता की लापरवाही के कारण फेसबुक पर कई हैकर फ्रेंड रिक्वेस्ट भेज पासवर्ड चोरी कर लेते हैं। फेसबुक का सबसे बड़ा खतरा है कि इस पर उपयोगकर्ता की निजी जानकारियों तक कोई भी पहुंच सकता है और गलत फायदा उठा सकता है। कंपनियां अपने विज्ञापन के साथ कुछ जानकारियां भी डालती हैं जिससे कई बार कंपनी के डाटा हैक कर लिए जाते हैं। हाल ही में यू–ट्यूब पर एक अनजान हैकिंग समूह ने 'ऑपरेशन फेसबुक' नाम से एक वीडियो अपलोड की है जिसमें व्यक्ति का चेहरा दिखाए बिना यह बताया गया है कि 5 नवम्बर 2011 को हम दुनिया की चहेती फेसबुक को खत्म कर देंगे, जिससे 75 करोड़ उपयोगकर्ताओं की गोपनीयता खत्म हो जाएगी। इससे बचने के लिए फेसबुक से लगातार जुड़ते लोगों को तो यही सलाह दी जा सकती है कि वे इसका उपयोग करने से पहले इसकी पूर्ण जानकारी अवश्य ले लें ■

मदारी से मुद्दई बनता मीडिया

जयप्रकाश सिंह

कांस्टीट्यूशन क्लब में मीडिया पर आयोजित एक संगोष्ठी में उपस्थित श्रोताओं की आलोचना से खीझकर आजतक के सम्पादक कमर वाहिद नकवी ने खुले मंच से कहा था कि 'मीडिया अब मदारी बन गया है।' एक ऐसा मदारी जो तरह–तरह के तमाशे दिखाकर लोगों का मनोरंजन करता है, लेकिन व्यक्ति और समाज के अस्तित्व को चुनौती देने वाली मूल समस्याओं पर ध्यान देने की फुर्सत उसके पास नहीं है और न ही इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में उसकी कोई सहभागिता है। कमर वाहिद नकवी का यह कथन प्रसिद्ध मीडिया विश्लेषक नोम चोमस्की की मीडिया को बाजारु खिलौना बनने के संदर्भ में की गयी टिप्पणी से मेल खाता है। चोमस्की कहते हैं कि – अपने दर्शकों को बाजार के हाथों उपभोक्ता के रूप में बेचना अब मीडिया का प्राथमिक कार्य हो गया है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में भारतीय मीडिया विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जिस दिशा में अग्रसर होने की कोशिश कर रहा था, खबरों के चयन और प्रस्तुतीकरण के जिस तरीके को अपनाया जा रहा था, उस पर दृष्टिपात करें तो उपरोक्त दोनों टिप्पणियां एक हद तक सही प्रतीत होती हैं। श्मशान पर किए जाने वाले विभिन्न तांत्रिक प्रयोगों और कापालिक क्रियाओं का प्रसारण 'एक्सक्लूसिव' खबर के रूप में हमारे खबरिया चैनल कर रहे थे। कोई बकरा शराब क्यों पी रहा है? स्वर्ग के लिए सीढ़ियां कहां से निकलती हैं? जैसे 'महत्वपूर्ण प्रश्नों' को लेकर हमारे खबरिया चैनल कई दिनों तक माथापच्ची करते रहे। राजू श्रीवास्तव के भद्दे चुटकुले और राहुल महाजन की अश्लील हरकतें मुख्य समाचार हुआ करते थे। किसी विशेष धारावाहिक के अगले एपीसोड में सास–बहू का रिश्ता किस मोड़ पर पहुंचेगा, इसका कयास भी खबरिया चैनल लगाते थे। समलैंगिकता जैसे गम्भीर मुद्दों पर विशेषज्ञों की राय जानने के लिए समाजशास्त्रियों की बजाय सेलिना जेटली जैसे सेलेब्रिटीज को आमंत्रित किया जाता था। इन महत्वपूर्ण खबरों के बीच यदि कोई रामसेतु आंदोलन हो जाता, तो पूरे देश में चक्काजाम होने तक उसके कवरेज की जरूरत नहीं समझी जाती थी। विश्व मंगल गो ग्राम यात्रा जैसी छोटी – मोटी घटनाएं सामाजिक मुद्दों पर गहरी नजर और पैनी दृष्टि रखने का दावा करने वाले पत्रकारों की पकड़ में नहीं आती थीं, जबकि इस यात्रा के जरिए साढ़े आठ करोड़ भारतीयों ने हस्ताक्षर कर गोसंरक्षण और गोसंवर्धन के लिए राष्ट्रपति से गुहार लगायी थी। गो ग्राम यात्रा को मिला जनसमर्थन उस मतसंख्या के लगभग बराबर है, जिसको प्राप्त कर कोई राजनीतिक दल केन्द्र में सत्तारुढ़ हो

सकता है। मीडिया के तृणमूल तथ्यों के प्रति अज्ञानता के अध्ययन के लिए विश्व मंगल गो ग्राम यात्रा को 'केस स्टडी' के लिए चुना जा सकता है। वास्तव में इस दौर का मीडिया मदारी नहीं मदारी का बंदर बन गया था ।

यह सब कुछ अनवरत रूप से चल रहा था। इसी बीच कालेधन के मुद्दे को लेकर योगऋषि स्वामी रामदेव और जनलोकपाल बनाने को लेकर अन्ना हजारे मीडिया में अवतरित होते हैं। सम्पूर्ण मीडिया में इन दोनों व्यक्तियों और इनके द्वारा उठाए गए मुद्दों के प्रति दीवानगी देखने को मिलती है। प्रोटोजोआ प्रजाति के भ्रष्टाचारियों के खिलाफ कार्डेटा प्रजाति के स्वामी रामदेव और अन्ना हजारे के मैदान में उतरने की घटना न केवल भारतीय जनता को प्रेरित करती है बल्कि जनता को सम्मोहित करने वाली मीडिया को भी सम्मोहित करती है। मीडिया में आम आदमी से जुड़े इन मुद्दों और इन मुद्दों को उठाने वाली आवाजों को पर्याप्त समय और स्थान मिलता है। साथ ही, इस मुद्दे के सतत कवरेज को लेकर मीडिया में एक सर्वसम्मति भी दिखाई दी।

आम आदमी से जुड़े किसी मुद्दे पर सर्वसम्मति बनना भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के इतिहास की एक दुर्लभतम घटना है। कभी किसी मुद्दे पर बनी भी तो वह दो चार दिनों में बिखर गयी। भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का व्यवस्था विरोध भी एक दायरे में होता रहा है। मुद्दों के आधार पर व्यवस्था को खुली चुनौती देने की प्रवृति भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में अभी तक नदारद रही है। व्यवस्था द्वारा निर्धारित दायरे में ही व्यवस्था का विरोध यह माध्यम करता रहा है।

दूसरे शब्दों में कहें तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में मुद्दों को लेकर की जाने वाली 'मुद्दई पत्रकारिता' नहीं की जाती थी। इस पड़ाव पर मुद्दई शब्द के संदर्भ में एक तथ्य स्मरण कराते चलें कि जब कोई व्यक्ति अथवा संस्था मुद्दों के आधार पर जीवनयापन की कोशिश करता है तो शोषणकारी व्यवस्था और व्यक्तियों से उसका टकराव स्वाभाविक हो जाता है। शायद इसीलिए न्यायालय में चलने वाले मुकदमों में प्रतिपक्ष को मुद्दई और समाज में अपने दुश्मन को भी मुद्दई कहा जाता है।

स्वामी रामदेव और अन्ना हजारे के संदर्भ मे पहली बार इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में न केवल एक सर्वसम्मति बनी बल्कि यह लम्बे समय तक चली भी। विशेषकर अन्ना हजारे के 16 अगस्त से प्रारम्भ होने वाले अनशन के संदर्भ में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने जिस अभूतपूर्व एकजुटता का परिचय दिया और जिस तरह व्यवस्था विरोध की व्यवस्था द्वारा निर्धारित पारंपरिक चौखटों को धराशायी किया, उससे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बेहतर भविष्य से एक आस बंधी है।

हम जानते हैं कि भारतीय पत्रकारिता आनुवांशिक रूप से व्यवस्था विरोधी रही है। स्वतंत्रता पूर्व की पत्रकारिता अपने तेवरदार और व्यवस्था विरोधी रवैये के लिए जानी जाती है। स्वतंत्रता के पश्चात भी ऐसे कई मौके आए जब प्रिंट मीडिया ने अद्भुत एकजुटता का प्रदर्शन किया और व्यवस्था के खिलाफ जाकर मुद्दों को उभारने का प्रयास किया। प्रिंट मीडिया के इस मुद्दई रवैये के कारण ही व्यवस्था को कई बार शीर्षासन करना पड़ा। अन्ना के अनशन को लेकर भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पहली बार उस 'मोड' में दिखी जिसकी उससे अपेक्षा की जाती रही है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का यह व्यवस्था विरोधी 'न्यू मोड' न केवल आम जनता के लिए बल्कि खुद उसके स्वास्थ्य के लिए भी लाभप्रद है। ऊल–जलूल कार्यक्रमों के प्रसारण से पैदा हुए विश्वसनीयता के संकट ने खुद मीडिया की प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर कर दिया था। शायद इसी कारण नेता–अभिनेता भी बीच बहस में रुककर मीडिया को आईना दिखा देते थे। आजतक पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम 'सीधी बात' में एक बार अभिनेता शाहरुख खान ने प्रभु चावला को लगभग डांटते हुए कहा था कि आप लोग जिस तरह अपनी टीआरपी बढ़ाने के लिए ऊल–जलूल कार्यक्रम दिखाते हैं, ठीक उसी तरह हम भी फिल्म को सफल बनाने के लिए कई स्टंट करते हैं। हम और आप दोनों पैसा कमाने के लिए यह सब करते हैं। फिर आपको नैतिक प्रश्न पूछने का क्या अधिकार है। इसी तरह उदयन शर्मा की पुण्यतिथि पर आयोजित एक कार्यक्रम में कपिल सिब्बल ने मीडिया की क्षमताओं पर कई सवाल खड़े कर दिए थे। यह बात 2009 के चुनावों के तुरंत बाद की है। ऐसा नहीं था कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभाव क्षीण हो गया था बल्कि वह इतना विखंडित था कि अनेक सटीक मुद्दों पर भी उसका स्वर 'मास मोबलाईजेशन' की परिघटना को जन्म नहीं दे पाता था। जब सभी चैनलों ने एक स्वर में अन्ना के अनशन से जुड़े मुद्दों को उठाया और लगभग 12 दिनों तक उसकी सतत कवरेज की, तब जाकर सत्ताधारियों को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की ताकत का अंदाजा लगा। सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने चैनलों से सभी पक्षों को दिखलाने का आग्रह किया तो दूसरी तरफ कुछ सरकारी प्रवक्ताओं ने अन्ना की आंधी को 'मीडिया मैनेज्ड' कहकर मीडिया की ताकत को अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया।

इस पूरे प्रकरण से यह भी स्पष्ट हुआ है कि मीडिया की असली ताकत आम जनता ही है। आम जनता की आवाज को प्रतिध्वनित कर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने व्यावसायिक हितों और सामाजिक प्रतिबद्धता को एक साथ साध सकती है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि अन्ना के अनशन के समय उभरी मुद्दई प्रवृति समय–समय पर मुखरित होती रहे। मुद्दई प्रवृत्ति को अपवाद की बजाय स्थायी भाव बनाकर ही मीडिया भारत की पहचान और अपनी भूमिका को बेहतर ढंग से परिभाषित और पोषित कर सकती है। ■

पत्रकारिता के प्रकाशपुंज बाबूराव विष्णु पराड़कर

सूर्यप्रकाश

भारत में पत्रकारिता का उद्‌भव पुनर्जागरण और समाज कल्याण के उद्‌देश्य से हुआ था। महात्मा गांधी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, महर्षि अरविंद आदि युगपुरूष पत्रकारिता की इसी परंपरा के प्रस्थापक थे, जिसने पत्रकारिता को देशहित में कार्य करने के लिए लक्ष्य और प्रेरणा दी। पत्रकारिता में उनके आदर्श ही पत्रकारों की वर्तमान पीढ़ी के लिए दिशा–निर्देश के समान हैं, जिन पर चलकर पत्रकारों की वर्तमान पीढ़ी अपनी इस अमूल्य विधा के साथ न्याय कर सकती है। पत्रकारिता की अमूल्य विधा वर्तमान समय में अपने संक्रमण काल के दौर से गुजर रही है। दरअसल पत्रकारिता में यह संक्रमण उन आशंकाओं का अवतरण है, जिसकी आशंका पत्रकारिता के युगपुरूषों ने बहुत पहले ही व्यक्त की थी। संपादकाचार्य बाबूराव विष्णुराव पराड़कर ने भविष्य में पत्रकारिता में बाजारवाद, नैतिकता के अभाव और पत्रकारों की स्वतंत्रता के बारे में कहा था–

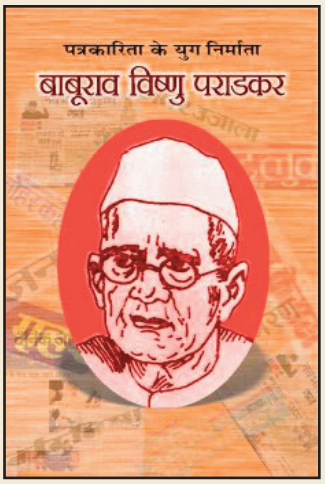

''पत्र निकालकर सफलतापूर्वक चलाना बड़े–बड़े धनियों अथवा सुसंगठित कंपनियों के लिए ही संभव होगा। पत्र सर्वांग सुंदर होंगे। आकार बड़े होंगे, छपाई अच्छी होगी, मनोहर, मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक चित्रों से सुसज्जित होंगे, लेखों में विविधता होगी, कल्पकता होगी, गंभीर गवेषणा की झलक होगी, ग्राहकों की संख्या लाखों में गिनी जाएगी। यह सब कुछ होगा पर पत्र प्राणहीन होंगे। पत्रों की नीति देशभक्त, धर्मभक्त अथवा मानवता के उपासक महाप्राण संपादकों की नीति न होगी– इन गुणों से सम्पन्न लेखक विकृत मस्तिष्क समझे जाएंगे, संपादक की कुर्सी तक उनकी पहुंच भी न होगी। वेतनभोगी संपादक मालिक का काम करेंगे और बड़ी खूबी के साथ करेंगे। वे हम लोगों से अच्छे होंगे। पर आज भी हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त है वह उन्हें न होगी। वस्तुतः पत्रों के जीवन में यही समय बहुमूल्य है।'' (संपादक पराड़कर में उद्धृत)

पराड़कर जी का यह कथन वर्तमान दौर की पत्रकारिता में चरितार्थ होने लगा हैं, जब पत्रकारों की कलम की स्याही फीकी पड़ने लगी है और समाज हित जैसी बातें बेमानी होने लगी हैं। इसका कारण पत्रकार नहीं बल्कि वे मीडिया मुगल हैं जो मीडिया के कारोबारी होते हैं। पत्रकारिता पर पूंजीपतियों के दखल और उसके दुष्प्रभावों के बारे में पराड़कर जी ने कहा था–

''पत्र निकालने का व्यय इतना बढ़ गया है कि लेखक केवल अपने ही भरोसे इसमें सेवा प्राप्त नहीं कर सकता। धनियों का सहयोग अनिवार्य हो गया है। दस जगह से धन संग्रह कर आप कंपनी बनाएं अथवा एक ही पूंजीपति पत्र निकाल दे, संपादक की स्वतंत्रता पर दोनों का परिणाम प्रायः एक सा ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रों की उन्नति के साथ–साथ पत्रों पर धनियों का प्रभाव अधिकाधिक परिमाण में अवश्य पड़ेगा।''(इतिहास निर्माता पत्रकार, डा. अर्जुन तिवारी)

बाजार के बढ़ते प्रभाव के कारण समाचारपत्र के स्वरूप और समाचारों के प्रस्तुतिकरण में आ रहे बदलावों के बारे में पराड़कर जी ने कहा था– ''पत्र बेचने के लाभ से अश्लील समाचारों को महत्व देकर तथा दुराचरण मूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णन कर हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे हैं, इस बात को कभी न भूलना चाहिए। अपराधी एकाध अत्याचार करके दण्ड पाता है और हम सारे समाज की रूचि बिगाड़ कर आदर पाना चाहते हैं।''(प्रथम संपादक सम्मेलन 1925 के वृंदावन हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय वक्तव्य से)

पराड़कर जी का यह कथन वर्तमान समय में और भी प्रासंगिक लगता है, जब खबर के बाजार में मीडिया मुगल अश्लील खबरों के माध्यम से बाजार पर हावी होने के प्रयास में रहते हैं।

पत्रकार को देश के समसामयिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक और विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों के बारे में जानकारी अवश्य होनी चाहिए। तभी वह अपने उद्‌देश्य में सफल हो सकता है। इसका वर्णन करते हुए पराड़कर जी ने कहा था –

''मेरे मत से संपादक में साहित्य और भाषा ज्ञान के अतिरिक्त भारत के इतिहास का सूक्ष्म और संसार के इतिहास का साधारण ज्ञान तथा समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र और अंतर्राष्ट्रीय विधानों का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है। अर्थशास्त्र का वह पण्डित न हो पर कम से कम भारतीय और प्रान्तीय बजट समझने की योग्यता उसमें अवश्य होनी चाहिए।'' (इतिहास निर्माता पत्रकार, अर्जुन तिवारी)

अभी हाल ही में प्रधानमंत्री ने टिप्पणी की थी कि ''मीडिया अब जज की भूमिका अदा करने लगा है'' यह कुछ अर्थों में सही भी है। पत्रकारों पर राजनीति का कलेवर हावी होने लगा है, पत्रकारिता के राजनीतिकरण पर टिप्पणी करते हुए पराड़कर जी ने कहा था–

''आज का पत्रकार राजनीति और राजसत्ता का अनुकूल्य उपलब्ध करने के लिए उनके मुहावरे में बोलने लगा है। उपभोक्ता संस्कृति के अभिशाप को लक्ष्य कर राजनेताओं की तरह आवाज टेरने वाले पत्रकार स्वयं व्यावसायिक चाकचिक्य के प्रति सतृष्ण हो गए हैं और उपभोक्ता संस्कृति ही इनकी संस्कृति बनती जा रही है।'' (पत्रकारिता इतिहास और प्रश्न, कृष्णबिहारी मिश्र)

संपादकाचार्य पराड़कर जी की पत्रकारिता का लक्ष्य पूर्णतः स्वतंत्रता प्राप्ति के ध्येय को समर्पित था। पराड़कर जी ने अपने उद्‌देश्य की घोषणा इन शब्दों में की थी–

शब्दों में सामर्थ्य का भरें नया अंदाज।
बहरे कानों को छुए अब अपनी आवाज।

5 सितंबर, 1920 को 'आज' की संपादकीय टिप्पणी में अपनी नीतियों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा था– ''हमारा उद्‌देश्य अपने देश के लिए सर्व प्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य है कि हम अपने देश के गौरव को बढ़ावें, अपने देशवासियों में स्वाभिमान संचार करें।''

पराड़कर जी की पत्रकारिता पूर्णतः ध्येय समर्पित पत्रकारिता थी, जिसका वर्तमान पत्रकार पीढ़ी में सर्वथा अभाव दिखता है। बाबूराव विष्णु पराड़कर पत्रकारिता जगत के लिए सदैव स्मरणीय आदर्श पत्रकार हैं। पत्रकारिता के सही मूल्यों को चरितार्थ करने वाले बाबूराव विष्णु पराड़कर जी की पत्रकारिता के पदचिन्ह वर्तमान पत्रकार पीढ़ी के लिए पथप्रदर्शक के समान हैं। ■

'सौदेबाजी' की राह पर पत्रकारिता : अशोक टंडन

भारत में पत्रकारिता ने अपनी शुरूआत 'मिशन' के तौर पर की थी जो धीरे–धीरे पहले 'प्रोफेशन' और फिर 'कमर्शियलाइजेशन' में तब्दील हो गई। आज पत्रकारिता कमर्शियलाइजेशन के दौर से भी आगे निकल चुकी है जिसके संदर्भ में माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व निदेशक अशोक टंडन से बातचीत के कुछ अंश यहां प्रस्तुत है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका आगमन कैसे हुआ? इस दौरान आपके क्या अनुभव रहें?

दिल्ली विश्वविद्यालय से जब मैं राजनीति शास्त्र में एम.ए. कर रहा था तो उस समय कुछ पत्रकारों को देखकर इस क्षेत्र की ओर आकर्षण बढ़ा। एम.ए. पूरी करने के बाद वर्ष 1970 में मुझे हिन्दुस्थान समाचार से विश्वविद्यालय बीट कवर करने का मौका मिला। वर्ष 1972 में मैंने पीटीआई में रिपोर्टिंग शुरू की और वहां विश्वविद्यालय, पुलिस, दिल्ली प्रशासन, संसद, विदेश मंत्रालय समेत लगभग सभी बीट कवर की। 28 वर्षों के दौरान मैंने लगभग 28 देशों की यात्राएं की। पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करना चुनौतीपूर्ण होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पत्रकारिता के आपके क्या अनुभव रहें?

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की पत्रकारिता के लिए पहले अपने देश को समझना होता है। भारत में जब वर्ष 1980 के दशक की शुरूआत में नॉन अलाइनमेंट समिट और कॉमनवेल्थ गेम्स समिट हुई तो उसमें रिपोर्टिंग का अवसर मिला। वर्ष 1985 में मुझे विदेश मंत्रालय की बीट सौंपी गई। इस दौरान भारत के प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति के साथ विदेश जाने का मौका मिला। वर्ष 1988 में मुझे पीटीआई लंदन का संवाददाता नियुक्त कर दिया गया। जब कोई पत्रकार विदेश में रहकर पत्रकारिता करता है तो उसका फोकस अपने देश पर ही रहता है।

आप पूर्व प्रधानमंत्री के मीडिया सलाहकार के रूप में कार्य कर चुके हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय में आपका क्या अनुभव रहा?

वर्ष 1998 में लंदन से जब वापिस आया तो प्रधानमंत्री कार्यालय में काम करने का मौका मिला। इस दौरान अपने साथी पत्रकारों से सहयोग करने का कार्य किया। आमतौर पर पत्रकार मेज के एक तरफ और अधिकारी दूसरी तरफ होता है। यहां मैंने मेज के दूसरी तरफ का भी अनुभव किया। प्रधानमंत्री कार्यालय में रहते हुए देशभर के पत्रकारों व विश्व के कुछ पत्रकारों के साथ सरकार की ओर से वार्तालाप किया जो एक अलग अनुभव रहा।

मीडिया में कमर्शियलाइजेशन का दौर कब से आया?

वर्ष 1947 से पहले पत्रकारिता को 'मिशन' माना जाता था, वर्ष 1947–75 तक मीडिया में 'प्रोफेशन' का दौर था। आपातकाल के खत्म होने के बाद पत्रकारिता में गिरावट आनी शुरू हो गई थी और वर्ष 1991 से उदारीकरण के कारण मीडिया में 'कमर्शियलाइजेशन' का दौर आया। लेकिन पेड न्यूज के दौर में पत्रकारिता के लिए कमर्शियल शब्द भी छोटा पड़ रहा है।

वर्तमान समय में पत्रकारिता जगत में आप क्या बदलाव देखते हैं?

वर्तमान दौर में 'सौदेबाजी की पत्रकारिता' हो रही है। यदि किसी को मीडिया द्वारा कवरेज करवानी है तो उसका मूल्य पहले से ही निर्धारित होता है। कमर्शियल में समाचार 'पेड' नहीं होता, विज्ञापन के जरिए पैसा कमाया जाता है लेकिन अब पत्रकारिता में 'डील' हो रही है। जो लोग इसको कर रहे हैं वह इसे व्यावसायिक पत्रकारिता मानते हैं। पत्रकारिता में 10 साल पहले ऐसी स्थिति नहीं थी। हालांकि पूरा पत्रकारिता जगत ही खराब है, मैं ऐसा नहीं मानता। पत्रकारिता में कुछ असामाजिक तत्वों के कारण पूरे पत्रकारिता जगत पर आक्षेप लगाना सही नहीं है।

वर्तमान समय में जहां चौथे स्तम्भ की भूमिका पर सवालिया निशान खड़े किए जा रहें हैं, ऐसी दशा में क्या आपको लगता है कि इसमें कोई सुधार हो सकता है?

पत्रकारिता के स्तर में गिरावट जरूर आई है। यदि कोई बहुराष्ट्रीय कम्पनी अगर अपना उत्पाद बाजार में लेकर आती है तो उसे मीडिया के माध्यम से समाचार के रूप में प्रस्तुत करवाती है। राजनैतिक दलों

द्वारा भी चुनाव के समय मीडिया से डील किया जाता है और संवाददाता के जरिए उम्मीदवार का प्रचार कराया जाता है। पत्रकारिता को बचाने वाले अब कम ही लोग रह गए हैं और अन्य धक्का देकर निकल रहे हैं, लेकिन मीडिया में अब भी कई लोग ईमानदारी से काम कर रहे हैं। पत्रकारिता में अभी स्थिति वहां तक नहीं पहुंची कि कुछ सुधार नहीं किया जा सकता। अच्छी पत्रकारिता आवाज बनकर उठेगी। भारतीय समाज की खूबी है कि यहां कोई भी विकृति अपनी चरम सीमा पर नहीं पहुंचती, उसे रास्ते में ही सुधार दिया जाता है। पत्रकारिता में अब तक जो भी निराशाजनक स्थिति सामने आई है वह अवश्य चिंता की बात है। लेकिन जब सीमा पार होने लगती है तो कोई न कोई उसे अवश्य रोकता है। भारत में पत्रकारिता का भविष्य उज्जवल है।

हाल ही में हुए जन आन्दोलन पर मीडिया कवरेज का क्या रूख रहा?

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया घटना आधारित मीडिया है। घटना यदि होगी तो लोग उसे देखेंगे और इससे चैनल की टीआरपी बढ़ेगी। कुछ लोगों का आरोप है कि मीडिया खुद घटना बनाता है जो काफी हद तक ठीक भी है। प्रिंस जब गड्ढे में गिरा तो उसे तीन दिन तक दिखाया गया जिसके कारण अन्य महत्वपूर्ण खबरें छूट गई। वहीं अन्ना के आंदोलन को भी मीडिया ने पूरे–पूरे दिन की कवरेज दी जो कुछ हद तक सही था क्योंकि आम जनता टेलीविजन के माध्यम से ही इस आन्दोलन से जुड़ी। मीडिया के प्रभाव के कारण यह आन्दोलन सफल हो पाया। हालांकि सरकार ने इस दौरान मीडिया की आलोचना की क्योंकि यह कवरेज उनके पक्ष में नहीं था। मीडिया की कवरेज का ही नतीजा था कि लोगों ने इस आन्दोलन के जरिए अपनी भड़ास निकाली। यदि ऐसा नहीं होता तो इसका परिणाम हानिकारक होता। मीडिया के माध्यम से ही विदेशों में भी लोगों ने इस आन्दोलन को देखा। चीन ने तो चिंता भी व्यक्त की कि भारत का मीडिया चीन के मीडिया को बिगाड़ रहा है। भारत का मीडिया स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। जब मैं प्रधानमंत्री कार्यालय में कार्यरत था तो गर्व महसूस किया कि विदेशों में भारतीय लोकतन्त्र की सराहना की जाती है। वह भारत की न्यायिक स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के कारण भारत के मीडिया को 'जीवन्त मीडिया' की संज्ञा देते हैं।

विश्व की चार सबसे बड़ी समाचार समितियां विदेशी ही है। क्या आपको लगता है कि उनका प्रभाव भारतीय मीडिया पर भी है?

यह चारों समाचार समितियां बहुराष्ट्रीय हैं और इनका मानना है कि यह स्वतन्त्र पत्रकारिता कर रही हैं लेकिन यह समाचार समिति भी किसी देश की ही है और इनके लिए देश का हित सर्वोपरि होता है। यहां राष्ट्रहित व निजी हित विरोधाभासी है। ए.पी. अमेरिका की प्रतिष्ठित समाचार समिति है। इसे सबसे पहले प्रिंट के लिए शुरू किया गया और 180 देशों में फैलाया गया। इसके पीछे उद्देश्य था कि पूरी दुनिया सूचना के तंत्र को अमेरिका के नजरिए से देखे। चीन भी आर्थिक महाशक्ति बनने के साथ अपनी समाचार समिति 'शिन्हुआ' को विश्व में फैला रहा है। वहीं दूसरी ओर भारत आर्थिक महाशक्ति के रूप में तो उभर रहा है लेकिन दुर्भाग्यवश सूचना के क्षेत्र में हम काफी पीछे हैं। सूचना के क्षेत्र में हम पहले की अपेक्षा सिकुड़ रहे हैं। प्रसार भारती, आकाशवाणी व दूरदर्शन पहले से सिकुड़ गए हैं। भारतीय समाचार समितियों की भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। हमारे देश में न तो सरकारी मीडिया का विकास हुआ और न ही समाचार समितियों को विस्तृत होने दिया गया। भारत में स्थित शिन्हुआ के ब्यूरो में 60 व्यक्ति, रायटर्स के ब्यूरो में 250 व्यक्ति व एपी के ब्यूरो में 350 व्यक्ति कार्यरत है। यह समाचार समितियां भारत को विश्व में अपने चश्मे से प्रस्तुत कर रही हैं। जिस तरह भारत के फिल्म उद्योग ने विश्व में अपनी पहचान बनाई है, उसी तरह हमें सूचना के क्षेत्र में भी आगे बढ़ना चाहिए था लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका।

पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण आज अंग्रेजी भाषा का जो प्रचलन बढ़ा है, ऐसे में हिन्दी पत्रकारिता को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है?

हिन्दी पत्रकारिता की हम जब भी चर्चा करते हैं तो हम उसको अंग्रेजी के सामने लाकर खड़ा कर देते हैं जो गलत है। हिन्दी अंग्रेजी की प्रतिस्पर्धी भाषा नहीं है। भारतीय पत्रकारिता ने अंग्रेजी भाषा को कभी भी अपना प्रतिस्पर्धी नहीं माना लेकिन जब भी हिन्दी पत्रकारिता को बढ़ाने की बात की गई तो हमने कह दिया कि अंग्रेजी के कारण ऐसा नहीं हो रहा। पिछले 10 सालों में हिन्दी पत्रकारिता का विस्तार हुआ है। मैं नहीं मानता कि अंग्रेजी के कारण हिन्दी पत्रकारिता को नुकसान पहुंचा है। शिक्षा में बढ़ोतरी के साथ हिन्दी के स्तर में भी वृद्धि हुई है। आज हिन्दी भाषी समाचार चैनलों की संख्या अंग्रेजी भाषी चैनलों से कहीं अधिक है। भारत में अंग्रेजी भाषा वर्ष 1947 से पहले ब्रिटिश शासन की देन है। अमेरिका के महाशक्ति बनने के कारण आज अंग्रेजी वैश्विक भाषा बन गई है। जिन देशों को अंग्रेजी नहीं आती थी, वह अंग्रेजी सीख रहे हैं। भारत को अंग्रेजी का लाभ वर्तमान समय में मिल रहा है।■

भाषायी पत्रकारिता के संस्थापक राजा राममोहन राय

राजा राममोहन राय! यह नाम एक प्रखर एवं प्रगतिशील व्यक्तित्व का नाम है, जिन्होंने भारत में भाषायी प्रेस की स्थापना का ऐतिहासिक कार्य किया। राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण एवं सामाजिक आंदोलनों का प्रणेता भी कहा जाता है। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरूद्ध जनजागरण का कार्य किया, जो तत्कालीन समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता थी। राजा राममोहन राय ने सामाजिक और राष्ट्रव्यापी जनजागरण कार्य पत्रकारिता के माध्यम से ही किया था। उन्होंने पत्रकारिता को जनजागरण के सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया था। उनके द्वारा चलाए गए सामाजिक आंदोलन और पत्रकारिता एक–दूसरे के पूरक थे। उनकी पत्रकारिता सामाजिक आंदोलन को मजबूती प्रदान करती थी।

राजा राममोहन राय का जन्म राधानगर, बंगाल में 22 मई, 1772 को कुलीन ब्राहमण परिवार में हुआ था। उनका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जो धार्मिक विविधताओं से परिपूर्ण था। उनकी माता शैव मत में विश्वास करती थीं एवं पिता वैष्णव मत में, जिसका उनके जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सामाजिक परिवर्तनों के प्रणेता और आधुनिक भारत के स्वप्नदृष्टा राजा राममोहन राय ने संवाद कौमुदी, ब्रह्मैनिकल मैगजीन, मिरात–उल–अखबार, बंगदूत जैसे सुप्रसिद्ध पत्रों का प्रकाशन किया। राजा राममोहन राय ने सन 1821 में बंगाली पत्र संवाद कौमुदी का कलकत्ता से प्रकाशन प्रारंभ किया। इसके बाद सन 1822 में उन्होंने फारसी भाषा के पत्र मिरात–उल–अखबार और ब्रह्मैनिकल मैगजीन का प्रकाशन किया। यह पत्र तत्कालीन समय में राष्ट्रवादी एवं जनतांत्रिक विचारों के शुरूआती समाचार पत्रों में से थे। इन समाचार पत्रों का उद्देश्य राष्ट्रीय पुनर्जागरण और सामाजिक चेतना ही था। इन समाचार पत्रों के अलावा राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी में बंगला, हेराल्ड और बंगदूत का भी प्रकाशन किया।

राजा राममोहन राय ने भारत में उद्देश्यपूर्ण पत्रकारिता की नींव डाली थी। उन्होंने अपने द्वारा प्रकाशित किए गए समाचार पत्रों का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा था कि–

''मेरा उद्देश्य मात्र इतना है कि जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध उपस्थित करूं जो उनके अनुभव को बढ़ावें और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हों। मैं अपनी शक्ति भर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूं और प्रजा को उनके शासकों द्वारा स्थापित विधि व्यवस्था से परिचित कराना चाहता हूं, ताकि जनता को शासक अधिकाधिक सुविधा दे सकें। जनता उन उपायों से अवगत हो सके जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पायी जा सके और अपनी उचित मांगें पूरी कराई जा सकें।''

राजा राममोहन राय ने भारत की पत्रकारिता की नींव उस समय डाली थी, जब भारत को पत्रकारिता के महत्वपूर्ण अस्त्र की आवश्यकता थी। वर्तमान प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कोलकाता प्रेस क्लब में अपने संबोधन में कहा था–

''उन्होंने बंगाली और फारसी भाषा में समाचार पत्रों का प्रकाशन किया और हमेशा ही प्रेस की स्वतंत्रता की लड़ाई के अगुआ रहे। राजा राममोहन राय ने बहुत पहले सन 1823 में ही प्रेस की स्वतंत्रता के महत्व और उसकी आवश्यकता की व्याख्या कर दी थी।''

प्रधानमंत्री ने प्रेस की स्वतंत्रता के संबंध में राजा राममोहन राय के शब्दों को ही उद्धृत करते हुए कहा– ''प्रेस की आजादी के बिना दुनिया के किसी भी हिस्से में क्रांति नहीं हो सकती है।''

प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर मौजूदा दौर में आवाजें उठती रहती हैं। प्रेस की स्वतंत्रता की लड़ाई का आरंभ राजा राममोहन राय ने 19वीं सदी में ब्रिटिश शासन से टकराव लेकर किया था। उनका मानना था कि समाचारपत्रों पर सरकार का नियंत्रण नहीं होना चाहिए और सच्चाई सिर्फ इसलिए नहीं दबा देनी चाहिए कि वह सरकार को पसंद नहीं है। प्रेस की स्वतंत्रता के मुद्दे पर ही इतिहास पर दृष्टि डालते हुए मनमोहन सिंह ने कहा– ''जब कोलकाता में प्रेस पर नियंत्रण करने का प्रयास किया गया, तब राजा राममोहन राय ने सरकार के निर्णय की आलोचना करते हुए ब्रिटिश सरकार को ज्ञापन सौंपा।

पत्रकारिता की स्वतंत्रता की ओर ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए राजा राममोहन राय ने ब्रिटिश सरकार से कहा– ''कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले अधिकतर समाचारपत्र यहां के मूल निवासियों के बीच लोकप्रिय हैं, जो उनमें एक स्वतंत्र चिंतन और ज्ञान की व्याख्या करते हैं। यह समाचार पत्र उनके ज्ञान को बढ़ाने और स्थिति को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं।''

उन्होंने ब्रिटिश सरकार से कहा– ''इन समाचारपत्रों के प्रकाशन पर रोक लगाया जाना उचित नहीं है।'' राजा राममोहन राय ने हमेशा ही पत्रकारिता की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था। उन्होंने सन 1815 से 1830 के कम अंतराल में ही तीस पुस्तकें लिखी थीं। सौमेन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार– ''बंगाली काव्य जगत ने बंकिम चंद्र चटर्जी और रविन्द्र नाथ टैगोर की कविताओं के माध्यम से जो ऊंचाई प्राप्त की है, उसकी आधारशिला राजा राममोहन राय ने ही रखी थी।''

राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का जनक माना जाता है। महान क्रांतिकारी सुभाष चंद्र बोस ने राजा राममोहन के बारे में कहा कि– ''राजा राममोहन राय भारतीय पुनर्जागरण के अगुआ थे जिन्होंने भारत में एक मसीहा के रूप में नए युग का सूत्रपात किया।''

राजा राममोहन राय की अंग्रेजी शासन और अंग्रेजी भाषा के प्रशंसक होने के कारण आलोचना की जाती रही है। उनकी तमाम आलोचनाओं के बाद भी भारत में भाषायी प्रेस की स्थापना और स्वतंत्रता के लिए किए गए उनके योगदान को भाषायी पत्रकारिता के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता है। राजा राममोहन राय अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व ब्रिटेन में जा बसे थे जहां 27 सितंबर, 1833 को ब्रिस्टल (इंग्लैण्ड) में उनका निधन हो गया। ■

हिन्दी पत्रकारिता की दशा और दिशा

वर्तमान समय में हिन्दी भाषा को और व्यापक रूप देने के लिए जो संघर्ष चल रहा है उससे सभी भली–भांति परिचित हैं। क्या आपको लगता है कि पत्रकारिता जगत में भी हिन्दी भाषा का जो प्रयोग हो रहा है वह सही प्रकार से नहीं हो रहा है? इसमें भी कहीं कुछ त्रुटियां या अशुद्धियां व्याप्त है? या हिन्दी भाषा के वर्तमान प्रयोग की स्थिति पूरी तरह से उचित और अर्थ पूर्ण है?

वर्तमान में जो मीडिया में हिन्दी का स्तर गिरता जा रहा है, उसके पीछे सबसे बड़ा कारण पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता स्तर है। हर व्यक्ति अपने को अंग्रेजी भाषा बोलने में गौरवान्वित महसूस करता है। इसके उत्थान के लिए सबसे पहले हमें ही शुरूआत करनी होगी क्योकि जब हम शुरूआत करेंगे तभी दूसरा हमारा अनुसरण करेगा।

सोहन लाल भारद्वाज, राष्ट्रीय उजाला

संस्कृत मां, हिन्दी गृहिणी और अंग्रेजी नौकरानी है, ऐसा कथन डॉ. फादर कामिल बुल्के का है, जो संस्कृत और हिन्दी की श्रेष्ठता को बताने के लिए सम्पूर्ण है। मगर आज हमारे देश में देवभाषा और राष्ट्रभाषा की दिनों–दिन दुर्गति होती जा रही है। या यूं कह लें कि आज के समय में मां और गृहिणी पर नौकरानी का प्रभाव बढ़ता चला जा रहा है तो गलत नहीं होगा। टीवी के निजी चैनलों ने हिन्दी में अंग्रेजी का घालमेल करके हिन्दी को गर्त में और भी नीचे धकेलना शुरू कर दिया और वहां प्रदर्शित होने वाले विज्ञापनों ने तो हिन्दी की चिन्दी की जैसे ''नीम के पेड़ पर करेला चढ़ गया हो''। इसी प्रकार से रोज पढ़े जाने वाले हिन्दी समाचार पत्रों, जिनका प्रभाव लोगों पर सबसे अधिक पड़ता है, ने भी वर्तनी तथा व्याकरण की गलतियों पर ध्यान देना बंद कर दिया और पाठकों का हिन्दी ज्ञान अधिक से अधिक दूषित होता चला गया। मैं ये बात अंग्रेजी का विरोध करने के लिए नहीं कह रहा हूं, बल्कि मेरी ये बात तो हिन्दी के ऊपर अंग्रेजी को प्राथमिकता देने पर केन्द्रित है।

अवनीश सिंह राजपूत, हिन्दुस्थान समाचार

हिन्दी पत्रकारिता स्वतंत्रता पूर्व से ही चली आ रही है और आजादी के आंदोलन में इसका बहुत बड़ा योगदान भी रहा है, लेकिन आज जो मीडिया में हिन्दी का स्तर गिरता दिखाई दे रहा है, वह पूरी तरह से अंग्रेजी भाषा के बढ़ते प्रभाव के कारण हो रहा है। आज मीडिया ही नहीं बल्कि हर जगह लोग अंग्रेजी के प्रयोग को अपना भाषाई प्रतीक बनाते जा रहे हैं। इसके लिए सभी को एकजुट होकर हिन्दी भाषा को प्रयोग में लाना होगा।

धर्मेन्द्र सिंह, दैनिक हिन्दुस्तान

अगर आज आप किसी को बोलते है कि 'यंत्र' तो शायद उसे समझ न आए लेकिन 'मशीन' शब्द हर किसी की समझ में आएगा। इसी प्रकार आज अंग्रेजी के कुछ शब्द प्रचलन में हैं, जो सबके समझ में है। इसलिए यह कहना कि पूर्णतया हिन्दी पत्रकारिता में सिर्फ हिन्दी भाषा का प्रयोग ही हो यह तर्क संगत नहीं है। हां, यह जरूर है कि हमें अपनी मातृभाषा का सम्मान अवश्य करना चाहिए और उसे अधिक से अधिक प्रयोग में लाने का प्रयास करना चाहिए।

नागेन्द्र, दैनिक जागरण

हिन्दी दिवस मतलब चर्चा–विमर्श, बयानबाजी, मानक हिन्दी बनाम चलताऊ हिन्दी। हिन्दी के ठेकेदार और पैरोकार की लफ्फाजी। बस करो यार! भाषा को बांधो मत, भाषा जब तक बोली से जुड़ी है, सुहागन है। जुदा होते ही वह विधवा के साथ–साथ बांझ बन जाती है। वह शब्दों को जन्म नहीं दे पाती। बंगाली, मराठी, गुजराती, उर्दू, फारसी, फ्रेंच, इटालियन कहीं से भी हिन्दी से मेल खाते शब्द मिले, उसे उठा लो। बरसाती नदी की तरह। सबको समेटते हुए। तभी तो हिन्दी समंदर बन पाएगी। रोक लगाओगे तो नाला, नहर या बहुत ज्यादा तो डैम बन कर अपनी ही जमीं को ऊसर करेगी। कॉर्पोरेट मीडिया तो इस ओर ध्यान दे नहीं रहा। हां, लोकल मीडिया का योगदान सराहनीय जरूर है। अरे हां, ब्लॉगरों की जमात को भी इसके लिए धन्यवाद।

चंदन कुमार, जागरण जोश.कॉम

हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है और हमें इसका सम्मान करना चाहिए लेकिन समाज में कुछ ऐसे लोग हैं जो हिन्दी के ऊपर उंगली उठाकर हिन्दी का अपमान करते रहते हैं। बात करें पत्रकारिता की तो हिन्दी पत्रकारिता में आजकल हिन्दी और इंग्लिश का मिला जुला रूप प्रयोग किया जा रहा है जो कि हमारे हिसाब से सही नहीं है। मैं आपको बता दूं कि हिन्दी के कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका इस्तेमाल न करने से वह धीरे–धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं जो हमारे लिए शर्म का विषय है। मैं अपने हिन्दी–भाषियों से निवेदन करता हूं कि हिन्दी को व्यापक रूप देने में सहयोग करें और हिन्दी को गर्व से अपनी राष्ट्रभाषा का दर्जा दें।

आशीष प्रताप सिंह, पीटीसी न्यूज

भाषाई लोकतंत्र का ही तकाजा है कि नित–नए प्रयोग हों। हां, पर वर्तनी आदि की गलतियां बिल्कुल अक्षम्य है। त्रुटियां–अशुद्धियां तो हैं ही। उचित और अर्थपूर्ण तो जाहिर है कि नहीं है। लेकिन यह सवाल इतना महत्वपूर्ण नहीं है। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है भाषा के अर्थशास्त्र का सवाल। हिन्दी दिवस पर इस बारे में बात होनी चाहिए।

कुलदीप मिश्रा, सीएनईबी

पत्रकारिता के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग अपनी सहूलियत के हिसाब से होता रहा है। यह जो स्थिति है उसका एक कारण हिंदी के एक मानक फॉन्ट का ना होना भी है। ज्यादातर काम कृति फॉन्ट में होता है लेकिन जगह–जगह उसके भी अंक बदल जाते है। कहीं श्रीदेव है तो कहीं ४सी गांधी और न जाने कितने फॉन्ट्स की भरमार है। अब पत्रकारिता में काम करने वाला कोई भी व्यक्ति एक संस्थान से दूसरे संस्थान में जाते समय फॉन्ट की समस्या से रूबरू होता है। इसलिए यहां हिंदी का प्रयोग सहूलियत के अनुसार हो रहा है, लेकिन पिछले कुछ दिनों में यूनिकोड के आने से कुछ स्थिरता जरूर आई है। दूसरी बड़ी समस्या यह है कि हम अभी भी यही मानते हैं कि अंग्रेजी हिंदी से बेहतर है। इसलिए जान–बूझकर हिंदी को हिंगलिश बना कर काम करना पसंद करते हैं और ऐसा मानते हैं कि अगर मुझे अंग्रेजी नहीं आती तो मेरी तरक्की की राह दोगुनी मुश्किल है। पत्रकारिता भी आम समाज से अलग नहीं है, उसने भी अन्य बोलियों के साथ–साथ विदेशी भाषा के शब्दों को अपना लिया है।

विकास शर्मा, आज समाज

■

विषय – आपातकाल की हिन्दी पत्रकारिता का अनुशीलन

शोधार्थी – डॉ. अरूण भगत, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, पीएचडी (सन्–2009)

25 जून 1975 भारत के इतिहास में एक ऐसा काला दिवस रहा है जब तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा कर भय, आतंक और दहशत का माहौल बना दिया। 19 महीनों तक चले आपातकाल के काले बादल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी छाए और इंदिरा गांधी ने प्रेस पर भी सेंसरशिप थोप दी। आपातकाल के चलते पत्रिका के स्वरूप में बड़ा बदलाव देखा गया और लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाने वाला मीडिया तानाशाही का शिकार हुआ।

वर्ष 1974 तक पत्रकारिता के माध्यम से सत्ता और सरकार की सर्वत्र आलोचना हो रही थी। देश में भ्रष्टाचार, शैक्षणिक अराजकता, महंगाई और कुव्यवस्था के विरोध में समाचार–पत्रों में बढ़–चढ़ कर लिखा जा रहा था। गुजरात और बिहार में छात्र–आंदोलन ने जनांदोलन का रूप ले लिया था जिसके नेतृत्व का भार लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपने कंधों पर ले लिया। उन्होंने पूरे देश में संपूर्ण क्रांति आंदोलन का आह्वान कर दिया था। दूसरी ओर लंबे समय तक सत्ता में बने रहने, सत्ता का केंद्रीयकरण करने, अपने विरोधियो को मात देने और बांग्लादेश बनाने में अपनी अहम भूमिका के कारण इंदिरा गांधी में अधिनायकवादी प्रवृत्तियां बढ़ती चली गईं और जब इलाहबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद अपने–आपको सत्ता से बेदखल होते पाया तो उन्होंने अपने कुछ चापलूसों के परामर्श से आपातकाल की घोषणा का निर्णय ले लिया। 25 जून 1975 को दिल्ली के रामलीला मैदान में विपक्षी नेताओं की जनसभा से श्रीमती गांधी घबरा गईं और उन्होंने आपातकाल की घोषणा कर दी।

आपातकाल के दौरान एक ओर जहां सत्ता और सरकार की चापलूसी करने वाले पत्रकार थे, वहीं दूसरी ओर प्रेस की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले पत्रकारों की भी कमी नहीं थी। वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर, देवेंद्र स्वरूप, श्याम खोसला, सूर्यकांत बाली, के.आर. मलकानी जैसे पत्रकारों ने तो जेल की यातनाएं भी भोगीं। इसके विपरीत ऐसे पत्रकारों की भी कमी नहीं थी, जिन्होंने सेंसरशिप को स्वीकार किया और रोजी–रोटी के लिए नौकरी को प्राथमिकता दी। यही स्थिति साहित्यकारों के साथ भी थी।

स्वतंत्र भारत में वर्ष 1975 में आपातकाल की घोषणा के साथ ही पत्र–पत्रिकाओं पर सेंसरशिप लगा दी गई, किंतु तमाम प्रतिबंधों के बावजूद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पूरी तरह ग्रहण नहीं लग सका। पत्र–पत्रिकाओं पर सेंसर लगा तो भूमिगत बुलेटिनों ने कुछ हद तक इसकी क्षतिपूर्ति की। कुछ संपादकों ने संपादकीय का स्थान खाली छोड़कर तो कुछ ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में महापुरूषों की उक्तियों को छापकर सरकार का विरोध किया।

सेंसरशिप और अन्य प्रतिबंधों के कारण सरकार और समाज के बीच सूचनाओं का प्रसारण इकतरफा हो रहा था। सरकार की घोषणाओं और तानाशाही रवैये की खबर तो किसी न किसी रूप में जनता तक पहुंच जाती थी, किंतु जनता द्वारा आपातकाल के विरोध और सरकारी नीतियों की आलोचना की खबर सरकार तक नहीं पहुंच पाती थी। सरकारी प्रेस विज्ञप्तियों के सहारे ही अखबारों में अधिकतर समाचार छप रहे थे। इकतरफा पक्ष की बार–बार प्रस्तुति से पत्र–पत्रिकाओं की विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिन्ह खड़ा हो गया था। इसलिए इकतरफा संचार के कारण आपातकाल के 19 महीनों तक सरकार गलतफहमी में रही, जिसका खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा।

सेंसरशिप के कड़े प्रतिबंधों और भय के वातावरण के कारण अनेक पत्र–पत्रिकाओं को अपने प्रकाशन बंद करने पड़े। इनमें 'सेमिनार' और 'ओपिनियन' के नाम उल्लेखनीय हैं। आपातकाल के दौरान 3801 समाचार–पत्रों के डिक्लेरेशन जब्त कर लिए गए। 327 पत्रकारों को मीसा में बंद कर दिया गया। 290 अखबारों के विज्ञापन बंद कर दिए गए। विदेशी पत्रकारों को भी पीड़ित–प्रताड़ित किया गया। ब्रिटेन के 'टाइम' और 'गार्जियन' के समाचार–प्रतिनिधियों को भारत से निकाल दिया गया। रॉयटर सहित अन्य एजेंसियों के टेलेक्स और टेलीफोन काट दिए गए। आपातकाल के दौरान 51 पत्रकारों के अधिस्वीकरण

रद्द कर दिए गए। इनमें 43 संवाददाता, 2 कार्टूनिस्ट तथा 6 कैमरामैन थे। 7 विदेशी संवाददाताओं को भी देश से बाहर जाने को कहा गया।

प्रेस की स्वतंत्रता पर अंकुश डालने के लिए समाचार–समितियों का विलय किया गया। आपातकाल के पूर्व देश में चार समाचार–समितियां थीं – पी.टी.आई., यू.एन.आई., हिंदुस्थान समाचार और समाचार भारती जिन्हें मिलाकर एक समिति 'समाचार' का गठन किया गया था जिससे यह पूरी तरह सरकारी नियंत्रण में रहे। आपातकाल के दौरान आकाशवाणी और दूरदर्शन पर से जनता का विश्वास उठ चुका था। भारत के लोगों ने उस समय बी.बी.सी. और वॉयस ऑफ अमेरिका सुनना शुरू कर दिया था।

आपातकाल की घोषणा के बाद प्रधानमंत्री के द्वारा ली गई पहली ही बैठक में प्रस्ताव आया कि प्रेस–परिषद् को खत्म किया जाए। 18 दिसंबर, 1975 को अध्यादेश द्वारा प्रेस–परिषद् समाप्त कर दी गई। आपातकाल के दौरान भूमिगत पत्रकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। भूमिगत संचार–व्यवस्था के द्वारा एक समानांतर प्रचार–तंत्र खड़ा किया गया था। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो जन–जीवन को एकपक्षीय समाचार ही मिल पाता और सच्ची खबरों से वह वंचित रह जाते। आपातकाल में संचार अवरोध का खामियाजा जनता पर नहीं पड़ सका, किंतु सत्ता और सरकार आपातकाल विरोधियों की मनोदशा को नहीं समझ पाए। संचार अवरोध का कितना बड़ा खामियाजा सत्ता को उठाना पड़ सकता है, यह वर्ष 1977 के चुनाव परिणाम से सामने आया।

संपादकों का एक समूह चापलूसी की हद किस तरह पार कर रहा था, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि दिल्ली के 47 संपादकों ने 9 जुलाई 1975 को श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा उठाए गए सभी कदमों में अपनी आस्था व्यक्त की, जिसमें समाचार–पत्रों पर लगाया गया सेंसर भी शामिल है। सेंसरशिप के कारण 'दिनमान' एकपक्षीय खबर छापने को बाध्य हुई। 'दिनमान' ने सेंसरशिप लगाए जाने का विरोध भले ही न किया हो, किंतु सेंसरशिप हटाए जाने पर संपादकीय अवश्य लिखा है।

आपातकाल की लोकप्रिय पत्रिका 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' भी सेंसरशिप लागू होते ही सरकार की पक्षधर हो गई। यह पत्रिका सरकार की कितनी तरफदारी कर रही थी इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि चुनाव की घोषणा के बाद 6 फरवरी, 1977 के अंक में 'राजनीतिक शतरंज के पुराने खिलाड़ी और नए मोहरे' शीर्षक से प्रकाशित आलेख में कांग्रेस का पलड़ा भारी होना सुनिश्चित किया गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि वर्ष 1977 के चुनाव में कांग्रेस की बुरी तरह से हार हुई थी।

आपातकाल के पूर्व 'सरिता' में चुटीले, बेबाक और धारदार लेख तथा संपादकीय छपा करते थे। सत्ता की मनमानी पर कड़ा प्रहार किया जाता रहा, किंतु आपातकाल लगने के बाद सेंसरशिप के कारण यह सिलसिला टूट गया। सेंसरशिप थोपे जाने और सत्ता के तानाशाही रवैये के कारण 'सरिता' ने 6 महीनों मे संपादकीय कॉलम लिखना छोड़ दिया।

'सारिका' का जुलाई 1975 का अंक सेंसरशिप का पालन कड़ाई से किए जाने का जीवंत दस्तावेज बन गया है। सेंसर अधिकारी द्वारा 'सारिका' के पन्नों पर काला किए गए वाक्यों और शब्दों को संपादक ने विरोध–स्वरूप वैसे ही प्रकाशित कर दिया था। इस अंक के पृष्ठ संख्या 27–28 को तो लगभग पूरी तरह काला कर दिया गया था। इसके बाद के अंकों में संपादकीय विभाग इतना संभल गया कि सेंसर अधिकारी को पृष्ठ काला करने की नौबत ही नहीं आई। 'लोकराज' के 5 जुलाई 1975 के अंक में 'आपातघोषणा' शीर्षक से संपादकीय छपा है। इस संपादकीय में कहा गया है कि कुछ लोगों के अपराध के लिए संपूर्ण प्रेस–जगत् को सेंसरशिप क्यों झेलना पड़े? 'लोकराज' के 12 जुलाई, 1975 के अंक में 'अनुशासन–पर्व' शीर्षक से एक संपादकीय छपा जिसमें आपातकाल की घोषणा का स्वागत किया गया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सेंसरशिप की कैंची ने पत्रकारिता के स्वरूप को ही बिगाड़ दिया था। दहशत और आतंक के माहौल में अधिकतर पत्र–पत्रिकाओं ने सेंसरशिप को स्वीकार कर लिया था। संपादकीय खाली छोड़ने और पृष्ठों के काले अंश को हू–ब–हू छापने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बच गया था।

आपातकाल की यह अवधि पत्रकारिता की दृष्टि से ऐसी रही कि यह अलग पहचान लिए है। आपातकालीन हिंदी पत्रकारिता के संबंध में आज अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। ऐसे में डॉ. अरूण कुमार भगत द्वारा 'आपातकाल की हिंदी पत्रकारिता का अनुशीलन' विषय पर किया गया शोध कार्य महत्वपूर्ण है। ■

हिन्दी हूं मैं...

हिमांशु डबराल

एक रात जब मैं सोया तो मैंने एक सपना देखा, जिसका जिक्र मैं आपसे करने पर विवश हो गया हूं। सपने में मैं हिन्दी दिवस मनाने जा रहा था। तभी कहीं से आवाज आई...रुको! मैंने मुड़कर देखा तो वहां कोई नही था। मैं फिर चल पड़ा..फिर आवाज आयी...रुको! मेरी बात सुनो। मैंने गौर से सुना तो लगा कि कोई महिला जैसे वेदना भरे स्वर में मुझे पुकार रही हो। मैंने पूछा आप कौन हो? जवाब आया...मैं हिन्दी हूं। मैंने कहा कौन हिन्दी? मैं तो किसी हिन्दी नाम की महिला को नहीं जानता। दोबारा आवाज आई...तुम अपनी मातृभाषा को भूल गए? मेरे तो जैसे रोंगटे खड़े हो गए...मैंने कहा मातृभाषा आप! मैं आपको कैसे भूल सकता हूं। फिर आवाज आयी...जब तुम सब मुझे बोलने में शर्म महसूस करते हो, तो भूलना न भूलना बराबर ही है।

फिर हिन्दी ने बोलना शुरू किया – तुम मेरी शोक सभा में जा रहे हो न? मैंने कहा ऐसा नहीं है ये दिवस आपके सम्मान में मनाया जाता है। हिन्दी ने कहा – नहीं चाहिए ऐसा सम्मान... मेरा इससे बड़ा अपमान क्या होगा कि हिन्दुस्तानियों को हिन्दी दिवस मनाना पड़ रहा है।

उसके बाद हिन्दी ने जो भी कहा वो इन पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत है...

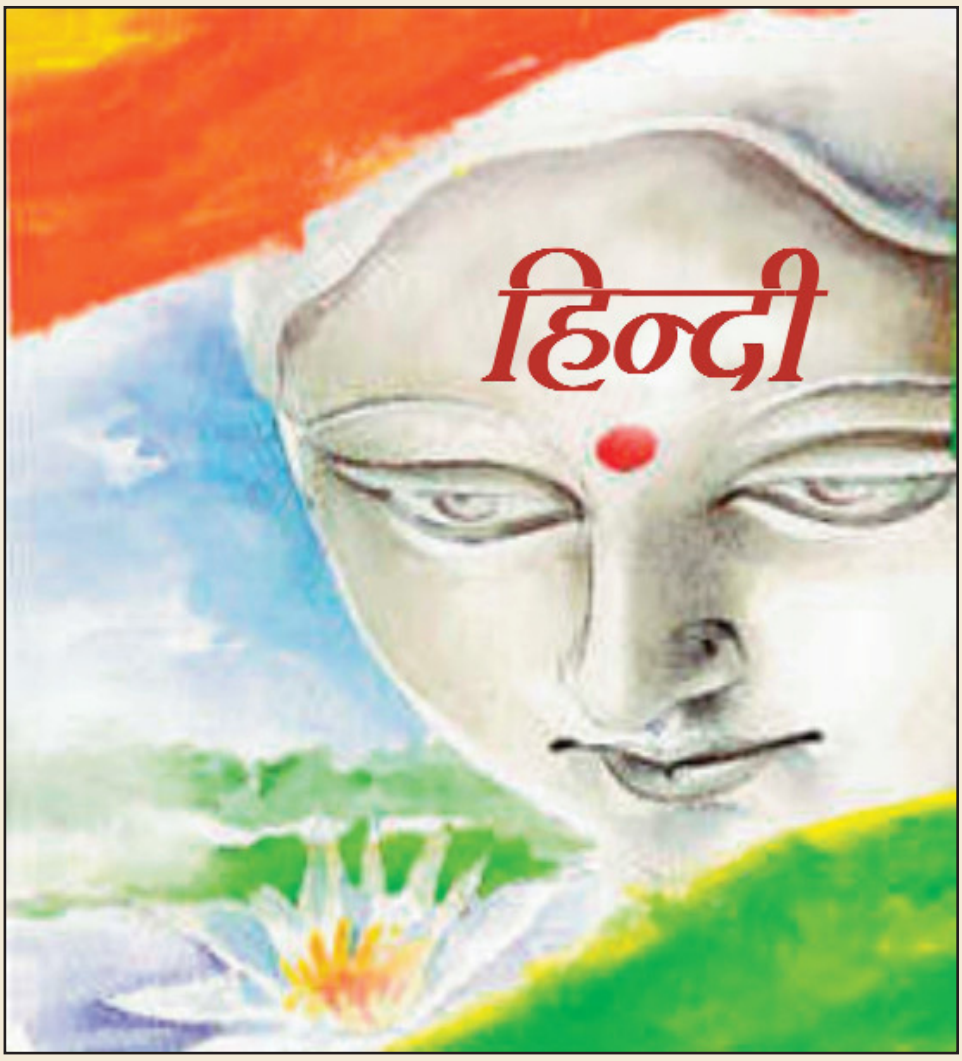

हिन्दी हूं मैं! हिन्दी हूं मैं..
भारत माता के माथे की बिन्दी हूं मैं
देवों का दिया ज्ञान हूं मैं,
घट रही वो शान हूं मैं,
हिन्दुस्तानियों का ईमान हूं मैं,
इस देश की भाषा थी मैं,
करोड़ों लोगों की आशा थी मैं,

हिन्दी हूं मैं! हिन्दी हूं मैं..
भारत माता के माथे की बिन्दी हूं मैं।
सोचती हूं शायद बची हूं मैं,
किसी दिल में अभी भी बसी हूं मैं,
पर अंग्रेजी के बीच फंसी हूं मैं,
न मनाओ तुम मेरी बरसी,
मत करो ये शोक सभाएं,
मत याद करो वो कहानी,
जो नहीं किसी की जुबानी
सोचती थी हिन्द देश की भाषा हूं मैं,
अभिव्यक्ति की परिभाषा हूं मैं,
सच्ची अभिलाषा हूं मैं,
लेकिन अब निराशा हूं मैं,
जी हां हिन्दी हूं मैं,
भारत मां के माथे की बिन्दी हूं मैं।।

इस सपने के बाद मैं हिन्दी दिवस के किसी कार्यक्रम में नहीं गया। घर में बैठ कर बस यही सोचता रहा कि क्या आज सच में हिन्दी का तिरस्कार हो रहा है? क्या हमें अपनी मातृभाषा के सम्मान के लिए किसी दिन की आवश्यकता है? शायद नहीं... मेरा तो यही मानना है कि आप अपनी मातृभाषा को केवल अपने दिलों–जुबान से सम्मान दो और अगर ऐसा सब करें तो हर दिन हिन्दी दिवस होगा।

जय हिन्द,जय हिन्दी...

■

1. **अग्रलेख (लीडर)** – समाचार पत्र के सम्पादकीय पृष्ठ का प्रमुख लेख लीडर कहा जाता है। प्रथम सम्पादकीय को भी लीडर कहते हैं। यह संपादक की विचार अभिव्यक्ति का नियंत्रित कॉलम है।

2. **बीट** – समाचार संकलन के संवाददाता के नियमित अथवा प्रमुख कार्यक्षेत्र को बीट कहा जाता है। उदाहरणार्थ– उद्योग, वित, विदेश मंत्रालय, संसद, राजनीति, विश्वविद्यालय, पुलिस आदि। एक्सक्लूजिव अथवा स्कूप को भी बीट कहते हैं।

3. **ब्यूरो** – समाचार पत्र प्रकाशन स्थल के अतिरिक्त अन्य शहर में स्थित सम्पादकीय कार्यालय को ब्यूरो कहा जाता है।

4. **फिलर** – पूरक अर्थात् किसी पृष्ठ पर रिक्त स्थान भरने की छोटी सामग्री। छोटे अनुच्छेदों के ये समाचार फिलर कहलाते हैं।

5. **फॉलोअप** – किसी पूर्व प्रकाशित या पहले दिन के समाचार के बाद के उससे जुड़े नए समाचार को प्राप्त करना फॉलोअप कहलाता है।